

## अज्ञेय और असाध्य वीणा : एक काव्यात्मक विश्लेषण

राजेश चन्द आदर्श<sup>1</sup>

‘असाध्य वीणा’ कविता ‘ऑगन के पार द्वार’ में संकलित है। यह संग्रह ‘अंतः सलिला’, ‘चक्रांत शिला’ और ‘असाध्य वीणा’ तीन खंडों में विभक्त है। ‘ऑगन के पार द्वार’ का प्रकाशन 1961 में हुआ था और 1964 में इसे ‘साहित्य अकादमी पुरस्कार’ मिला। अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि हैं। वे नए शब्दों के निर्माण, शिल्प और उपमानों के प्रयोग करने में हस्तसिद्ध हैं। ‘असाध्य वीणा’ एक लंबी कविता है लेकिन एक लंबी कविता होने के बावजूद भी इसे लंबी कविता की पदवी नहीं मिल सकी। यह कविता ‘असाध्य वीणा’ एक जापानी लोक-कथा पर आधारित है, जो ‘ओकाकुरा’ की ‘दी बुक ऑफ़ टी’ में संग्रहित है। हिंदी साहित्य में यह कविता अज्ञेय के संकलन ‘ऑगन के पार-द्वार’ में संकलित है। जैसा कि ‘असाध्य वीणा’ नाम से ही स्पष्ट है जो पूर्व में कभी बजती रही होगी। लेकिन अब वह नहीं बजती, अर्थात् असाध्य हो गयी हो। पूरी कविता इसी भावभूमि पर आधारित है।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद जब बौद्ध धर्म हीनयान और महायान में विभाजित हो गया। उस पर हिंदू धर्म के उपनिषदों का प्रभाव पड़ने लगा था तो उसमें आत्मा, परमात्मा, परम ब्रह्म जैसे तत्वों का समावेश होने लगा था और बौद्ध धर्म पूरी तरह से बदलने लगा था। ब्राह्मण धर्म ने समकालीन बौद्ध धर्म और जैन धर्म में भी विभाजन कर दिया और उसका स्वरूप पहले जैसा नहीं रहा और उसका मूल्यांकन भी ब्राह्मण धर्म या हिंदू धर्म के मानदंडों के अनुरूप होने लगा। इसलिए बौद्ध धर्म की कथाओं के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई पड़ना स्वाभाविक था। ‘असाध्य वीणा’ की पूरी कथा इसी बात में निहित है कि अपने आप को पूरी तरह उस परम सत्ता को सौंपे बिना ईश्वर से साक्षात्कार संभव नहीं है। जैसा कि कविता के शुरु और अंत से स्पष्ट होता है कि यह कविता नाटकीयता लिए हुए, कथा शैली पर आधारित है। इसे कविता के प्रारंभ में देखा जा सकता है -

आ गए प्रियंबद ! केशकम्बली ! गुफा-गेह !

राजा ने आसन दिया। कहा :

“कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आपा भरोसा है अब मुझ को  
साथ आज मेरे जीवन की पूरी होगी !”<sup>1</sup>

कविता के अंत में कथा-शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है -

“उठ गयी सभा। सब अपने-अपने काम लगे युग पलट गया।  
प्रिय पाठक ! यों मेरी वाणी भी मौन हुई।”<sup>2</sup>

यह दोनों उदाहरण नाटकीयता और कथा शैली के ही उदाहरण हैं। साथ ही “मुझे स्मरण है”, “हाँ, मुझे स्मरण है।” जैसे वाक्य कविता में रोचकता और जिज्ञासा पैदा करते हैं और पाठकों को बाँधकर रखने में सक्षम हैं। ‘युग पलट गया।’ जैसे वाक्य कथा की पुरानी शैली को जीवित रखने में सक्षम हैं। कथा (कविता) की शुरुआत में ही प्रियंबद के आने की खुशी और बड़ी उम्मीद के साथ उनके सम्मुख वीणा का रखा जाना, यही सिद्ध करता है कि केश कंबली बहुत बड़े तपस्वी (सिद्ध) हैं। समाज में जब सिद्धों का स्थान सर्वोपरि था और यह धारणा बलवती थी कि सिद्ध कुछ भी कर सकते हैं। आज भी ‘सिद्ध’ शब्द चमत्कार के संदर्भ में उसी परम्परा का निर्वाह करता है और भाषा व्यवहार में ‘वे बड़े ‘सिद्ध पुरुष’ या ‘सिद्ध स्त्री’ हैं। जैसे वाक्य इसी बात के प्रमाण हैं। इसलिए केश-कंबली के सामने वह वीणा जो असाध्य हो चुकी थी, रखी जाती है।

कहा जा सकता है कि इस जापानी कथा के अनुवाद पर पुरबिया लोक-नाटकों का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

कविता बहुत धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ती है -

केश कम्बली गुफा गेह ने खोला कम्बल धरती पर चुपचाप बिछाया।

वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर, प्राण खींच, कर के प्रणाम, अस्पर्श छुवन से छुए तारा<sup>3</sup>

इसके बाद लोगों की उम्मीद साधक के साथ बढ़ जाती है। उपस्थित लोग यह उम्मीद करते हैं कि वीणा बजेगी।

वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।

“धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक तक दिया। सभा चकित थी - अरे, प्रियंबद क्या होता है ?

केशकंबली अथवा हो पराभूत झुक गया वाद्य पर ?

वीणा क्या सचमुच है असाध्य?”<sup>4</sup>

<sup>1</sup>प्रोफेसर, हिंदी विभाग, आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

<sup>1</sup>ऑगन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 69, तेरहवीं संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

<sup>2</sup>वही, पृष्ठ 79.

<sup>3</sup>ऑगन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 70, तेरहवीं संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

<sup>4</sup>ऑगन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 71, तेरहवीं संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

इन पंक्तियों के साथ कवि पाठकों के साथ तारतम्य जोड़ना चाहता है। लेकिन इसके बाद लोगों की उम्मीद को एक बार फिर झटका लगने लगता है और उन्हें प्रतीत होने लगता है कि वीणा सचमुच असाध्य है। इसके बाद एक लंबी आध्यात्मिक यात्रा, जिसमें उस किरीट वृक्ष, जिससे वीणा निर्मित हुई थी, उससे पूर्ण साक्षात्कार करना। किरीट तरु की विशालता ही अपने आप में परम ब्रह्म है जिस प्रकार उसका तीनों लोकों में विस्तार है और उसकी लकड़ी से बनी वीणा स्वयं में पार ब्रह्म का एक अंश है अर्थात् शरीर है। शरीर (आत्मा) को समझे बिना परमात्मा को नहीं समझा जा सकता। (लेकिन यहाँ किरीट के साथ वीणा भी परम ब्रह्म है और वहीं प्रियंवद साधक के साथ वीणा भी आत्मा का प्रतीक है।)

इस प्रकार यह कविता शरीर के द्वारा ईश्वर को समझने की, परम तत्व को अपने अंदर उतारने की कविता है।

अपने आप को वीणा को समर्पित करने के क्रम में समर्पण इतना है कि वह (प्रियंवद) उस ईश्वर के स्वरूप को देखकर डर जाता है।

“मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं  
ओ रे तरु ! ओ वन ! ओ स्वर-सँभार !  
नाद-मय संसृति ! ओ रस-प्लावन !

मुझे क्षमा कर-भूल अकिंचनता को मेरी-

मुझे ओट दे-ढँक ले-छा ले- ओ शरण्य !”<sup>5</sup>

यह डर ठीक उसी प्रकार का दृश्य उत्पन्न करता है जैसे महाभारत के युद्ध में कृष्ण का स्वरूप देखने के बाद अर्जुन को डर लगता है। गीता के अनुसार अपने विश्वरूप में भगवान संपूर्ण ब्रह्मांड का दर्शन एक पल में करा देते हैं। जिसमें ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिन्हें मनुष्य नें देखा है परंतु ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं जिसे मानव ने न ही देखा और न ही देख पाएगा।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सस्त्रशः

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।<sup>6</sup>

अर्थात् हे पार्थ! अब तुम मेरे अनेक अलौकिक रूपों को देखो। मैं तुम्हें अनेक प्रकार की आकृतियों वाले रंगों को दिखाता हूँ।

जैसे ही प्रियंवद ने उस किरीट में अपने को सौंप कर खो जाता है और वीणा अपने आप बज उठती है। लेकिन इस बीच प्रियंवद ठीक वैसे ही डरता है जैसे महाभारत की कथा में अर्जुन का डरना दिखाया गया है।

मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं ! ओ रे तरु ! ओ वन !  
ओ स्वर-सँभार ! नाद-मय संसृति ! ओ रस-प्लावन !  
मुझे क्षमा कर - भूल अकिंचनता को मेरी -  
मुझे ओट दे - ढँक ले - छा ले - ओ शरण्य !<sup>7</sup>

वीणा का स्वयं संकृत होना और सभा में उपस्थित राजा-रानी सभी दर्शकों को अलग-अलग आत्म-अनुभव करवाती है। यह अलग-अलग अनुभव ही परमब्रह्म के साथ अलग-अलग जुड़ाव है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका ईश्वर के साथ जैसा लगाव है उसे ईश्वर वैसा ही दिखाई पड़ता है। यहाँ भी वीणा का स्वर ‘सबने अलग-अलग सुना’ इसी ओर इशारा है। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो ‘जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।’

यहाँ आत्मा और परब्रह्म की दो स्थितियाँ हैं - पहली, आत्मा के संदर्भ में खुद प्रियंवद और दूसरी, वीणा। ब्रह्म की भी दो स्थितियाँ हैं पहली, प्रियंवद के संदर्भ में परब्रह्म और दूसरी, वीणा के संदर्भ में विशाल किरीट तरु। प्रियंवद खुद को परम ब्रह्म के सम्मुख समर्पित करते हैं और वीणा के माध्यम से किरीट तरु (परम ब्रह्म) तक पहुँचते हैं। और दूसरी स्थिति में प्रियंवद खुद को और वीणा को एक मानते हुए, परम सत्ता और किरीट तरु को एक मानते हुए, ध्यान की परम अवस्था में अपने आप को विशालता के सम्मुख पूर्ण आत्म-समर्पण करते हैं। यहाँ आंतरिक और बाह्य जगत दोनों के समर्पण के दो स्तर हैं, जिसे साधारण शब्दों में आत्मा और परमात्मा का विस्तार कहा जा सकता है। हालांकि बौद्ध धर्म ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया था लेकिन परवर्ती बौद्ध धर्म में हिंदू या ब्राह्मण धर्म का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है और आत्मा जैसी चीजों का अस्तित्व प्रारंभ हो जाता है। जब समर्पण अपने लक्ष्य की पूर्ति कर लेता है तो साधक की आत्मा का विस्तार समस्त सृष्टि में दिखाई देने लगता है। उसे बाह्य-जगत में होने वाली समस्त वासनाओं, क्रियाकलापों और घटनाओं को जानने की शक्ति मिल जाती है, जिसे संबंधित साहित्य में ‘सिद्ध’ कहते हैं। कवि और कलाकार जगत में व्याप्त समस्याओं का अपने शब्दों में अभिव्यक्ति करते हैं। इस अभिव्यक्ति के लिए कभी-कभी शब्दों की कमी हो जाती है। शब्दों का चयन इस बात की पुष्टि कर देता है। अकस्मात्, अपलक, अवाक, अस्तित्व, कुहरा, खींच, गान, तू, क्षण, सन्नाटा, साँस, स्तब्ध, स्मृति, स्वर, मुखर, मौन अज्ञेय जी के प्रिय शब्द हैं।

अपनी प्यास, इस से कह गया।  
खींच लंबी साँस, उतर गया।<sup>8</sup>

-----  
नहीं जानता, क्यों सागर था मौन, क्यों धरा थी मुखर।<sup>9</sup>

<sup>5</sup> ऑनन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 75, तेरहवाँ संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

<sup>6</sup> गीता : 11/5

<sup>7</sup> ऑनन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 75, तेरहवाँ संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

<sup>8</sup> अंतः सलिल, पृष्ठ : 30, ऑनन के पार द्वार, तेरहवाँ संस्करण - 2005, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली - 110032

<sup>9</sup> चक्रांत शिला, पृष्ठ - 64, ऑनन के पार द्वार, तेरहवाँ संस्करण - 2005, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली - 110032

-----  
उस पार देखने की उत्कंठा हमेशा से, हर व्यक्ति में रही है। अभिव्यक्ति के तरीके अलग-अलग अवश्य हो सकते हैं।  
कुछ रचनाओं में हम देख सकते हैं। महादेवी वर्मा की कविता में -

सुना था मैंने इसके पार, बसा है सोने का संसार!  
जहाँ से हँसते विहग ललाम, मृत्यु छाया का सुनकर नाम!  
धरा का है अनन्त शृंगार, कौन पहुँचा देगा उस पार ?

-----  
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है !  
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?  
व्यों मुझे प्राचीर बन कर आज मेरे श्वास घेरे ?  
हरिवंशराय बच्चन की कविता में -  
इस पार प्रिये तुम हो मधु है,  
उस पार न जाने क्या है।

कवि द्वारा साधारण जीवन की बात करते-करते उसका आध्यात्मिक हो जाना कोई नई बात नहीं है। और यहाँ भी 'इस पार उस पार' के अंत में आकर कविता आध्यात्मिक हो उठती है -

स्वर तालमयी वीणा बजती, मिलती है बस झंकार मुझे  
मेरे सुमनों की गंध कहीं, यह वायु उड़ा ले जाती है।  
ऐसा सुनाता उस पार प्रिये, ये साधन भी छीन जायेंगे।

तब मानव की चेतनता का आधार न जाने क्या होगा।

इस पार प्रिये तुम हो, मधु है। उस पार न जाने क्या होगा।

यहाँ भी वीणा बजती है और उसकी झंकार सुनाई पड़ती है। वीणा का बजना और उसके स्वरों का सुनाई देना, शरीर का जीवित होना और उसमें परमात्मा की अनुभूति होना है। व्यक्ति के जैसे कर्म होते हैं, ईश्वर की वैसे ही अनुभूति होती है। लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं होता। उस पार का तात्पर्य अपनी वर्तमान परिस्थितियों के पार जाना भी होता है। इस संबंध में ओम् प्रकाश वाल्मीकि जी की कविता को देखा जा सकता है -

रोशनी के उस पार, जहाँ आदमी मात्र एक यूनिट है।  
राशन कार्ड पर चढ़ा हुआ, या फिर कागज़ का एक टुकड़ा।  
जिसे मतपेटी में डालते ही, हो जाता है वह अपाहिज और दुबक रहने के लिए अभिशप्त भी।

वाल्मीकि जी की कविता में लोकतंत्र के भविष्य की चिंता है, न कि ईश्वरीय चिंतन। लेकिन अज्ञेय की कविता में ईश्वरीय अनुभूति के साथ-साथ आकांक्षा और जरूरतों की शृंखला है।

सब ने अलग-अलग सुना।  
इस को  
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का -  
उस को  
आतंक-मुक्ति का आश्वासन :  
इस को  
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक -  
उसे  
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौधी खुदबुदा<sup>10</sup>

यहाँ वीणा का अलग-अलग सुनाई पड़ना सुनने वालों की आकांक्षाएँ हैं, जो वीणा के माध्यम से साकार हुई हैं।  
श्रेय नहीं कुछ मेरा :

मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में -  
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने सब-कुछ को सौंप दिया था -  
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं, न वीणा का था:  
वह तो सब-कुछ की तथता थी  
महाशून्य, वह महामौन  
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय

<sup>10</sup> ऑगन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 77, तेरहवाँ संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032

जो शब्दहीन सब में गाता है।<sup>11</sup>

केवल कृष्ण घोडेला के अनुसार - 'असाध्य वीणा' लंबी कविता में 'किरीट तरु' परम सत्ता का प्रतीक है और 'प्रियंवद' व्यक्ति सत्ता का। परम सत्ता असीम और विराट है जबकि व्यक्ति सत्ता सीमित है। उस परम सत्ता से मिल जाने, उसे जान लेने की आकांक्षा हमेशा व्यक्ति सत्ता में रही है। यह भक्ति की पराकाष्ठा नहीं बल्कि ध्यान की चरम अवस्था है। ईश्वर का पूर्ण साक्षात्कार है और यह कुछ माइने में भागवत गीता के कृष्ण के ब्रह्मदर्शन से कहीं श्रेष्ठ है। (क्योंकि ईश्वर का सही साक्षात्कार आत्म दर्शन ही है।) भक्तिकाल की न होते हुए भी यह कविता आत्मज्ञान और ध्यान का संदेश देने में पूर्ण सक्षम है।

©WE-Faculty of Arts

<sup>11</sup> ऑगिन के पार द्वार, असाध्य वीणा : अज्ञेय, पृष्ठ : 79, तेरहवीं संस्करण, 2005, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110032